बुद्धवर्ष २५४५, माघ पूर्णिमा, २७ फरवरी, २००२ वर्ष ३१ अंक ९

धम्मवाणी

अनभिज्झालु विहरेय्य, अब्यापन्नेन चेतसा।
सतो एकग्गचित्तस्स, अज्झत्तं सुसमाहितो॥
अं. नि. १.४.२९

लोभरहित (चित्त से) विहार करे, क्रोधरहित चित्त से विहार करे, स्मृतिमान और एकाग्र चित्त वाले का अंदर सुसमाहित होता है।

[धारण करे तो धर्म]

मन का स्वभाव कैसे बदलें?

(जी-टीवी पर क्रमशः चौवालीस कड़ियों में प्रसारित पूज्य गुरुदेव के प्रवचनों की उन्नीसवीं कड़ी)

सारे कर्मों को सुधारने के लिए मन के कर्मों को सुधारना होता है और मन के कर्म को सुधारने के लिए मन पर पहरा लगाना होता है। कैसे कोई पहरा लगाएगा जब यह ही नहीं जानता कि मन क्या है और कैसे काम करता है? उसका शरीर से क्या संबंध है? वह शरीर से कैसे प्रभावित होता है? वह शरीर को कैसे प्रभावित करता है? इस इंटर-एक्शन की वजह से कैसे विकारों का उद्गम होता है, संवर्धन होता है? यह सारा कुछ कैसे जानेगा? पुस्तकों से नहीं जान सकता। प्रवचनों से नहीं जान सकता। इसके लिए स्वयं काम करना पड़ेगा। अंतर्मुखी होकर के काया में स्थित होना पड़ेगा। इस साढ़े तीन हाथ की काया के भीतर मन कैसे काम कर रहा है, उसे अनुभूति से जानना पड़ेगा। जैसे इस शरीर स्कंध के बारे में सच्चाई को जानने के लिए, स्थूल-स्थूल सच्चाइयों से काम शुरू करते हैं और उसका विघटन होते-होते, उसका विश्लेषण होते-होते, उसके टुकड़े होते-होते स्थूल से सूक्ष्मता की ओर, अधिक सूक्ष्मता की ओर बढ़ते जाते हैं और ऐसी अवस्था पर जा पहुँचते हैं जहां भौतिक जगत का अंतिम सत्य, वह नन्हें-से-नन्हां परमाणु कण जिसे कलाप कहा गया, वह अनुभूति पर उतर जाय।

ठीक इसी प्रकार चित्त के बारे में पूरी जानकारी करने के लिए उसका भी विभाजन, विघटन; विभाजन, विघटन; यह केवल बुद्धि वाला अध्ययन नहीं, अनुभूति वाला विश्लेषणात्मक अध्ययन करते-करते, स्थूल से सूक्ष्मता की ओर जाते-जाते आगे जाकर देखेंगे कि कोई एक सौ इक्कीस प्रकार के चित्त हैं और बावन प्रकार की चित्त-वृत्तियां हैं। इस क्षण कौन-सा चित्त जागा? किस चित्तवृत्ति के साथ जागा। अगले क्षण कौन-सा चित्त जागा, कौन-सी चित्तवृत्ति के साथ जागा? वह बहुत आगे की अवस्था है। जब विपश्यना की डाक्टरेट करेंगे तब उसका काम आएगा। अब तो उनके नाम भी गिनने की जरूरत नहीं। एक सौ इक्कीस चित्त और बावन चित्तवृत्तियां कौन-कौन-सीहैं? उनको याद कर लेंगे, रट लेंगे तो भी क्या मिलेगा? कोई स्कूल या कालेज की परीक्षा थोड़े ही देनी है कि जवाब दे दिया, सारे गिन कर बता दिये और अच्छे नंबर मिल गये, पास हो गये। अरे, नहीं पास हुए बाबा! भीतर के स्वभाव को नहीं पलटा तो इस दुनिया के इम्तिहान में पास नहीं हुए। उसके लिए अंतर्मुखी हो कर के चित्त संबंधी सच्चाई का अनुभव कर के, उसकी जानकारी करनी है। अनुभूति के स्तर पर जानकारी करनी है।

नया-नया साधक जब इस काम को शुरू करता है तो मानस के चार मोटे-मोटे खंड अनुभूति पर उतरने लगते हैं। मानस के चार मोटे-मोटे खंड क्या हैं? पहले को कहते हैं –विज्ञान। पच्चीस सौ वर्ष में भाषा बदल जाती है। शब्दों के अर्थ बदल जाते हैं। आज तो साइंस को विज्ञान कहने लगे। उन दिनों की भाषा में यह नहीं था। विज्ञान माने मानस का वह खंड जो जानने का काम करता है। जिसे आज की अंग्रेजी में कांशियसनैस कहें। जानने का काम करता है। ये जो हमारी इंद्रियां हैं –आंख है, कान है, नाक है, जीभ है और यह त्वचा है –ये निष्प्राण हैं, निर्जीव हैं। अपने-आप में कोई काम नहीं कर सकती, जब तक कि मन का यह हिस्सा 'विज्ञान' इनके साथ न लग जाय। यथा –आंखों के साथ आंख का विज्ञान लगेगा तो वह देख पायेगी। कानों के साथ कान का विज्ञान लगेगा तो वह सुन पाएंगे। नाक के साथ नाक का विज्ञान लगेगा तो वह सूंघ पायेगा। जीभ के साथ जीभ का विज्ञान लगेगा तो वह चख पायेगी। त्वचा के साथ त्वचा का विज्ञान लगेगा तो वह स्पर्श का अनुभव कर पायेगी। तो यह जानने वाला खंड विज्ञान कहलाया।

जैसे ही कान के दरवाजे पर कोई खटपट हुई, हमें कोई शब्द सुनायी दिया। आंख के दरवाजे पर खटपट हुई, कोई रूप दिखायी दिया। नाक के दरवाजे पर कोई खटपट हुई, कोई गंध सूंघी गयी। जीभ के दरवाजे पर कोई खटपट हुई, कोई रस चखा गया। काया के दरवाजे पर कोई खटपट हुई, किसी स्पृष्टव्य पदार्थ का स्पर्श हुआ। ऐसे ही मन का अपना एक दरवाजा है। उस पर कोई खटपट हुई कि चिंतन शुरू हुआ। किसी भी दरवाजे पर कोई घटना घटी तो मानस का यह खंड (विज्ञान) अपना सिर उठाता है –अरे, कुछ हुआ। कान के दरवाजे पर कुछ हुआ अथवा नाक के दरवाजे पर हुआ, कुछ हुआ...। इतने में मानस का दूसरा खंड अपना सिर उठाएगा। उसे उन दिनों की भाषा में कहते थे – संज्ञा। उसे बुद्धि भी कह सकते हैं। उसका काम है – पहचानना। अब तक के जितने अनुभव हुए हैं और उनकी जो याददाश्त है उसके आधार पर मानस का यह खंड पहचानता है। कान में शब्द आया, क्या शब्द आया? आंख से रूप दिखा तो कैसा रूप दिखा? नाक में गंध आयी तो कैसी गंध आयी? जीभ पर रस पड़ा तो कैसा रस पड़ा? शरीर पर कोई स्पृष्टव्य पदार्थ स्पर्श किया तो कैसा स्पर्श हुआ? मन पर कोई चिंतन चला तो कैसा चिंतन चला? यह

केवल पहचान कर ही नहीं रह जायगा, बल्कि उसका मूल्यांकन भी करेगा। कान पर कुछ खटपट हुई, कोई शब्द आया तो विज्ञान ने कहा –अरे, कुछ खटपट हुई। अब संज्ञा कहती है, हां भाई, हुई तो। पर क्या शब्द आया? ओ, यह गाली का शब्द आया, यह प्रशंसा का शब्द आया। पहचान लिया, पर केवल पहचान कर नहीं रह गया, बल्कि मूल्यांकन भी किया –अरे, गाली! यह तो बहुत बुरी, प्रशंसा तो बहुत अच्छी। मूल्यांकन कर दिया – बहुत बुरी, बहुत अच्छी।

कोई अच्छा साधक ठीक से विपश्यना कर रहा होगा तो देखेगा कि एक घटना और घटने लगी। ये सारी बातें उस अवस्था पर जाकर बहुत स्पष्ट होती हैं जबकि शरीर का सारा ठोसपना समाप्त हो जाता है। सारे शरीर में केवल तरंगें ही तरंगें, तरंगें ही तरंगें। **"सब्बो पज्जलितो लोको, सब्बो लोको पकम्पितो"** – केवल प्रज्ज्वलन है, प्रकंपन है। कान में कोई शब्द आया तो जो शब्द आया वह भी प्रकंपन है, कान भी प्रकंपन है। छूते ही एक और तरह का प्रकंपन चला जो न्यूट्रल है और वह सारे शरीर में समा गया। विज्ञान ने कहा, कुछ हुआ? संज्ञा ने कहा, हां, हुआ और यह गाली का शब्द है तो वही प्रकंपन बड़ा दुःखद हो गया। बड़ा दुःखद हो गया। सारे शरीर में एक दुःखद संवेदना की धारा चल पड़ी। संज्ञा ने कहा, अरे, यह तो प्रशंसा है, बहुत अच्छी है। तो वही प्रकंपन जो न्यूट्रल था, सारे शरीर में बड़ी सुखद, बड़ी सुखद –प्रकंपन की एक धारा चल पड़ी।

अब मानस के तीसरे खंड ने अपना काम करना शुरू किया। उसे उन दिनों की भाषा में कहते थे –वेदना। आज तो वेदना केवल पीड़ा को कहने लगे। इसलिए वेदना शब्द का प्रयोग नहीं करते, संवेदना कहेंगे। क्योंकि वह सुखद भी होती है, दुःखद भी होती है, न्यूट्रल भी होती है। गाली आयी। पहचान लिया बुरी है तो संवेदना बड़ी दुःखद हुई। प्रशंसा आयी, पहचान लिया बहुत अच्छी है तो संवेदना बड़ी सुखद हुई।

इतने में मानस का चौथा खंड अपना काम करना शुरू कर देता है। संवेदना दुःखद हुई तो प्रतिक्रिया करता है, मुझे 'यह नहीं चाहिए, नहीं चाहिए', उससे द्वेष करता है। संवेदना सुखद हुई तो प्रतिक्रिया करता है, 'यह तो और चाहिए, और चाहिए'। दुःखद हुई तो नहीं चाहिए माने द्वेष करता है। सुखद हुई तो चाहिए माने राग करता है। मानस का यह चौथा खंड, जिसे उन दिनों की भाषा में संस्कार कहते थे। ये जो संस्कार हैं, यही कर्म है।

मानस का पहला खंड – 'विज्ञान' जो काम करता है उससे कोई कर्म-बीज नहीं बनता। उससे कोई फल नहीं आता। मानस का दूसरा खंड – 'संज्ञा' जो काम करती है वह भी कर्म-बीज नहीं, उसका भी कोई फल नहीं आता। मानस का तीसरा खंड – 'वेदना' जो सुखद, दुःखद की अनुभूति करती है, उससे भी कोई कर्म-बीज नहीं बनता। अतः उसका भी कोई फल नहीं आता। लेकिन मानस का यह चौथा खंड –जो प्रतिक्रिया करता है, यही कर्म है। इसीलिए इसको कर्म-संस्कार कहा। यही कर्म-संस्कार है।

हम बार-बार, बार-बार विपश्यना करते हुए देखेंगे कि इन चारों खंडों में से जो पहला खंड विज्ञान है – बेचारा बड़ा दुर्बल है। कुछ घटना हुई तो जान गया घटना हुई। इतने में दूसरे और फिर तीसरे ने काम करना शुरू किया। पर चौथा तो इतना प्रबल हुआ कि प्रतिक्रिया ही प्रतिक्रिया, प्रतिक्रिया ही प्रतिक्रिया। राग की प्रतिक्रिया तो लगातार राग ही राग की प्रतिक्रिया। द्वेष की प्रतिक्रिया तो लगातार द्वेष ही द्वेष की प्रतिक्रिया। बड़ा बलवान हो गया, जबकि पहला खंड बड़ा दुर्बल है। अब सारी साधना हमें इसी दिशा की ओर ले जाती है कि यह जो देखने वाला है, वह साक्षीभाव से केवल देखता रह जाय, तटस्थभाव से देखता रह जाय और जो प्रतिक्रिया करने वाला है, वह दुर्बल होता चला जाय, दुर्बल होता चला जाय। वह प्रतिक्रिया करे भी तो गहरी प्रतिक्रिया न करे। कर्म-संस्कार खनाये भी तो गहरे कर्म-संस्कार न बनाये।

कर्म-संस्कार भी तीन प्रकार के होते हैं। एक तो ऐसा कर्म-संस्कार कि हमने पानी पर लकीर खैंची और खैंचते ही मिटती गयी। एक कर्म-संस्कार ऐसा कि जैसे बालू पर लकीर खैंची –पर इधर से हवा आयी, उधर से हवा आयी, सुबह खैंची तो शाम तक मिट गयी। एक कर्म-संस्कार ऐसा कि जैसे चट्टान पर छेनी-हथौड़े से मार-मार करके छेद कर लकीर करे और बड़ी गहरी लकीर खैंचे। समय पाकर के वह भी मिटेगी, लेकिन बड़ा लंबा समय लगता है। ये गहरे कर्म-संस्कार हमारे लिए नये जन्म का कारण बनते हैं। इन्हें हम भव-संस्कार कहें, ये भव बनाते हैं। नया-नया भव, नया-नया भव, पत्थर की लकीर वाले हैं ना। अब ये पत्थर की लकीर वाले संस्कार बनाने से कैसे बचें? मानस का स्वभाव कैसे बदलें? यह स्वभाव जो प्रतिक्रिया करता है तो करता ही जाता है। राग की प्रतिक्रिया तो राग ही राग, राग ही राग। द्वेष की प्रतिक्रिया तो द्वेष ही द्वेष, द्वेष ही द्वेष। क्रोध जागा तो कितनी देर तक क्रोध जगाते चला जायगा। वासना जागी तो कितनी देर तक वासना ही वासना। भय जागा तो कितनी देर तक भय ही भय। जो विकार जगाता है, कितनी देर चलता है, कितनी देर चलता है। बेचारा विज्ञान, जिसका काम द्रष्टाभाव से देखना है, बड़ा दुर्बल हो गया और यह संस्कार जिसका काम कर्म-संस्कार खनाना है, बड़ा तेज हो गया। बड़ा तेज हो गया। बड़ा सबल हो गया तो गहरे-गहरे पत्थर की लकीर वाले, पत्थर की लकीर वाले संस्कार बनाये जा रहा है।

क्या करेंगे विपश्यना से? यही कि उसका स्वभाव पलटेंगे। जो कर्म-संस्कार बन रहा है वह पत्थर की लकीर वाला न बने। बहुत हो तो बालू की लकीर का बन कर रह जाय। अरे, आगे जा करके तो ऐसा हो जाय कि केवल पानी की लकीर है। बनी और मिट गयी। इसी के लिए सारी मेहनत करनी होती है। सारी मेहनत, सारी तपस्या इसीलिए है। यही अंतर्तप है कि मन के कर्मों का स्वभाव पलटें। उन गहराइयों तक पलटें जहां से उत्पत्ति होती है। ऊपर-ऊपर से बुद्धि के स्तर पर तो यों समझ में आयेगा कि इस आदमी ने मुझे गाली दी ना, इसलिए मुझे दुःख हुआ। ऊपर-ऊपर की बात ठीक है। उसने गाली दी, मुझे दुःख हुआ। इस आदमी ने मेरी प्रशंसा की ना! मुझे सुख हुआ। ऊपर-ऊपर से बिल्कुल ठीक है। गहराइयों तक जायेंगे, जड़ों तक जायेंगे तो पता लगेगा कि उस गाली के और तेरे भीतर जागने वाले दुःख के बीच में और भी एक कड़ी है, जिसे तू नहीं जानता। वह कड़ी यह है कि गाली देते ही उसका मूल्यांकन हुआ। मूल्यांकन होते ही शरीर में एक दुःखद संवेदना चली। तेरी जो द्वेष की, क्रोध की प्रतिक्रिया हो रही है, वह सारी इस दुःखद संवेदना के प्रति हो रही है। तेरे मन में राग जागा तो केवल प्रशंसा को ले करके नहीं जागा। ऊपर-ऊपर से यों लगता है –अच्छा लगा, इसलिए राग जागा। अरे, नहीं, जैसे ही वह शब्द तेरे कानों पर आया और उसका मूल्यांकन हुआ –'बहुत अच्छा' तब सुखद संवेदना जागी। तो मानस जो राग किया द्वेष की प्रतिक्रिया कर रहा है, वह इन संवेदनाओं पर कर रहा है। शरीर पर संवेदना किस प्रकार की हो रही है। दुःखद हो रही है, कि सुखद हो रही है कि न्यूट्रल हो रही है?

इसको जानेंगे ही नहीं कि शरीर के भीतर क्या हो रहा है? पहले तो ध्यान ही नहीं करते, सदैव बहिर्मुखी, बहिर्मुखी। जबसे जन्मे, आंख खुली, बहिर्मुखी ही बहिर्मुखी। बाहर-बाहर की सच्चाइयों में ही सारा जीवन बिता दिया। कभी ध्यान करने बैठे भी तो किसी कल्पना का ध्यान करने लगे – हमारी परंपरागत दार्शनिक मान्यता यह है। हमारी परंपरागत दार्शनिक

मान्यता यह है। अब करो उसका ध्यान। अरे, उसका ध्यान करते-करते चित्त तो एकाग्र हो जायगा, पर यह सारा प्रपंच कैसे समझोगे? यह कर्म-संस्कार कहां बनता है और वह कितना गहरा बन रहा है? उसको कैसे पलटोगे? उसे जानना जरूरी है। इसलिए इस विद्या में और कोई बात जुड़ने न पाये। केवल चित्त और केवल शरीर, इन दोनों के आपसी इंटर-एक्शन को, बस इसी को देखते रहना है। इसी को देखते-देखते हम जड़ों तक पहुँच जायेंगे और जड़ों को सुधारने का काम कर लेंगे।

अन्यथा बुद्धि के स्तर पर तो जरूर सुधार लेंगे। राग नहीं करना चाहिए, द्वेष नहीं करना चाहिए। बार-बार, बार-बार सुनते-सुनते बुद्धि पर, मानस के ऊपरी स्तर पर बहुत अच्छा लेप लगा। अच्छी बात है। अरे, कुछ नहीं से तो यही अच्छा। बुद्धि तो निर्मल होने लगी। लेकिन वह लेप भी ऐसा है कि टिकता नहीं। अंतर्मन का स्वभाव तो वैसा का वैसा। वैसी ही प्रतिक्रिया करेगा। बार-बार दुःखद संवेदना जागेगी और वह द्वेष जगायेगा। बार-बार सुखद संवेदना जागेगी और वह राग जगायेगा। उसके प्रतिक्रिया करने के स्वभाव का हमें पता ही नहीं कि कहां हो रही है तो उसको पलटेंगे कैसे? तो वहां उसकी जड़ों तक पहुँचना जरूरी है। अन्यथा पेड़ के ऊपर-ऊपर की डालियां सुधारते रह जायेंगे, ऊपर-ऊपर के पत्ते सुधारते रह जायेंगे, फूल सुधारते रह जायेंगे, फल सुधारते रह जायेंगे। लेकिन जड़ें तो बीमार ही हैं। जड़ सुधरी ही नहीं तो पेड़ कैसे सुधरेगा? पेड़ हमारा रोगी ही रहेगा। सारे मानस को अगर निरोगा करना है तो जड़ों को निरोगा करना पड़ेगा और जड़ों को निरोगा करने के लिए उस अवस्था तक पहुँचना होगा जहां संवेदनाएं महसूस हो रही हैं। सुखद हैं या दुःखद हैं, जिस किसी कारण से हैं। सुखद हैं तो भी दृष्टाभाव से देखेंगे। विज्ञान को प्रबल करेंगे। तटस्थभाव से जानेंगे। यह सुखद है, पर अनित्य भी तो है। बदलती है। उत्पाद होता है, व्यय हो जाता है। चलो देखें तो, देखें तो। यही करेंगे विपश्यना में। देखें तो! अनित्य है ना! देखें तो! यों देखते-देखते देर-सबेर समाप्त हो गयी। दुःखद संवेदना है तो दुःखद संवेदना है। विज्ञान प्रबल है, देख रहा है। दुःखद संवेदना है। संस्कार को प्रतिक्रिया करने नहीं देते। द्वेष नहीं जगने देते। द्वेष नहीं जग रहा है, केवल देख रहे हैं तो स्वभाव पलट रहे हैं। द्वेष जागा भी तो पानी की लकीर की तरह जाग कर रह गया, बालू की लकीर जैसे जाग के रह गया। जागा राग, पानी की लकीर या बालू की लकीर की तरह जाग कर रह गया। अब उसे पत्थर की लकीर नहीं बनने देंगे।

समय लगता है। कोई जादू नहीं है। कोई चमत्कार नहीं है। कोई गुरु महाराज का आशीर्वाद नहीं है। काम करना पड़ता है। किसी देवी की कृपा नहीं। देवता की कृपा नहीं। स्वयं काम करना पड़ता है। अपने मन को मैंने बिगाड़ा, उसे सुधारने की मेरी जिम्मेदारी है और सुधारने का यह तरीका है। तो गहराइयों में जाकर के यह जो प्रतिक्रिया करने वाला स्वभाव है, इसे दुर्बल बनाते जांय, दुर्बल बनाते जांय और मानस का यह साक्षीभाव का स्वभाव है उसे सबल बनाते जांय, सबल बनाते जांय। पत्थर की लकीर जैसे संस्कार बनने न पायें। हम दिन भर न जाने कितने संस्कार बनाते हैं। प्रतिक्षण कोई न कोई संस्कार बनते ही रहता है। भीतर प्रतिक्रिया होते ही रहती है। रात को सोने से पहले जरा चिंतन करके देखें आज हमने कितने संस्कार बनाए? याद करके देखेंगे तो एक या दो, जिनका मन पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ा वही उभर कर आएंगे। अरे, आज तो मैंने यह या वह बड़ा गहरा कर्म-संस्कार बना लिया। ऐसे एक या दो ही उभर कर आएंगे। महीने के आखिर में चिंतन करके देखेंगे, इस महीने भर में गहरे-गहरे कितने संस्कार बनाये? तो जितने गहरे संस्कार बनाये उनमें से एक या दो जो सबसे गहरे हैं, वही उभर कर आयेंगे। अरे, इस महीने मैंने यह संस्कार बहुत गहरा बना लिया – एक या दो। इसी प्रकार साल के अंत में कोई इक्का-दुक्का गहरा संस्कार ही सिर उठाएगा।

ठीक इसी प्रकार हम चाहें या न चाहें, मृत्यु के समय कुदरतन, जो संस्कार बहुत गहरा है, अपने आप उभर करके ऊपर आएगा और जिस प्रकार का कर्म-संस्कार उभर करके ऊपर आया, मानस पर उसी तरह की तरंगें होंगी तो मृत्यु के बाद का जो पहला क्षण है माने अगले जीवन का प्रथम क्षण उसी प्रकार की तरंगों वाला मिलेगा। उन तरंगों के साथ समरस हो जायगा। इस जीवन का अंतिम क्षण अगले जीवन के प्रथम क्षण का जनक है। जैसा बाप वैसा बेटा। वही गुण-धर्म-स्वभाव ले करके जन्मेगा। अगले जन्म का पहला क्षण इस जन्म के अंतिम क्षण की संतान है। वैसा ही होगा।

तो अंतिम क्षण कैसा हो? विपश्यना करते-करते, ये जो विपश्यना के संस्कार हैं, सजग रहने के संस्कार हैं, ये भी तो अपना बल रखते हैं। ये जागेंगे और मृत्यु के क्षण बहुत पीड़ा की अनुभूति हो रही है तो यह विपश्यना का संस्कार, जिसने विज्ञान को बड़ा बलवान बनाया, वह समता से देख रहा है तो यह अंतिम क्षण बड़ा अच्छा क्षण हुआ। अंतिम क्षण अच्छा हुआ तो अगला क्षण अपने-आप अच्छा होगा। लोक सुधर जायगा तो परलोक अपने आप सुधर जायगा। तो विपश्यी साधक मरने की कला सीखता है। मरने की कला वही सीखेगा जिसने जीने की कला सीखी। जिसे जीना ही नहीं आया, अरे, उसे मरना क्या आयेगा? व्याकुल होकर के ही मरेगा।

पिछले चालीस वर्षों में जब से विपश्यना के संपर्क में आया हूं, आखिर विपश्यी भी तो मरता ही है। हमारे अनेक परिचित विपश्यी मृत्यु को प्राप्त हुए। केवल दो या तीन ऐसे हैं कि जिनके बारे में यह नहीं कहा जा सकता। लेकिन बाकी सैंकड़ों लोग जो मरे हैं, सबकी यही सूचना मिली कि कोई बेहोश हो करके नहीं मरा। विपश्यना करने वाला बेहोश हो करके मर ही नहीं सकता। भयभीत हो करके मर ही नहीं सकता। रोते हुए मर नहीं सकता। व्याकुल हो करके मर नहीं सकता। शांत चित्त से, प्रसन्न चित्त से या तो सांस देख रहा है या शरीर पर होने वाली संवेदनाओं को देख रहा है और यों देखते-देखते मृत्यु को स्वीकार करता है। अंतिम सांस छोड़ता है। ऐसे रोगी जो कैंसर के रोगी हैं और उनका वह मृत्यु का समय कितना पीड़ाजनक होता है? डाक्टर बिचारे तरह-तरह की नींद की सूइयां देते हैं, पैनकिलर्स की सूइयां देते हैं ताकि रोगी दुःख पाता हुआ न मरे, बेहोशी में मर जाय।

एक नहीं, अनेक विपश्यी साधकों के बारे में ऐसी सूचना मिली कि इतनी भयंकर पीड़ा है और वह मुस्करा रहा है, अच्छा, यह भी अनित्य है। यह भी अनित्य है। अरे, तो मरना आ गया ना! क्योंकि जीना आ जाता है। सारे जीवन यह प्रयास करता रहा कि कितनी ही पीड़ा क्यों न हो, कितनी ही दुःखद संवेदना क्यों न हो – यह अनित्य है, यह नश्वर है, यह भंगुर है। बुद्धि के स्तर पर नहीं, अनुभूति के स्तर पर जान रहा है और समता में है। ऐसा व्यक्ति बड़ी अच्छी मृत्यु प्राप्त करेगा। तो लोक सुधर गया, परलोक सुधर गया। अरे, धर्म तो इसीलिए होता है। लोक भी सुधरे, परलोक भी सुधरे। जीवन में धर्म उतरने लगे। भीतर की सच्चाइयों को देखते-देखते चित्त का स्वभाव बदलते-बदलते जो निर्मलता आने लगे तो इस जीवन में भी मंगल ही मंगल, कल्याण ही कल्याण। अगले जीवन में भी मंगल ही मंगल। कल्याण ही कल्याण। शुद्ध धर्म के रास्ते चलने वाला, भीतर की प्रज्ञा जगाने वाला व्यक्ति अंतर्मुखी होकर, कायस्थ होकर जब धर्म के रास्ते चलता है तो उसका मंगल ही मंगल! कल्याण ही कल्याण! उसकी स्वस्ति ही स्वस्ति! उसकी मुक्ति ही मुक्ति!

विपश्यना साधना संस्थान, (नई दिल्ली-३०) पर आयोजित होने वाली कार्यशालाएं (वर्ष २००२)

(१) मई २२-३१ बालशिविर शिक्षकों तथा उनके क्षेत्रीय संयोजकों का प्रशिक्षण
बालशिविर-- **क**. मई २६-२७ केवल छात्र (आयु: १२-१६ वर्ष)
ख. मई २८-२९ केवल छात्राएं (आयु: १२-१६ वर्ष)
ग. मई ३०-३१ छात्र-छात्राएं (आयु: ८-१२ वर्ष) [बालशिविर प्रथम दिवस ९.०० बजे प्रात: आरंभ होकर अगले दिन ५.०० बजे सायं समाप्त होंगे।]
(२) विपश्यना साधना द्वारा नैतिक मूल्यों का प्रतिष्ठापन
क. जून ०८-२२ स्कूल व कालेज के अध्यापकों के लिए कार्यशाला
जून १९-२३ ऐसी कार्यशालाएं संचालित करने हेतु विपश्यना के सहायक आचार्यों के लिए नैतिक-मूल्य शिक्षा [कार्यशाला प्रथम दिवस १०.०० बजे प्रात: आरंभ होकर अंतिम दिवस लगभग ५.०० बजे सायंकाल समाप्त होगी।]
(३) जुलाई २३-३१ सहायक आचार्यों का प्रशिक्षण
(४) अगस्त २०-२८ पालि-प्रशिक्षण
(५) सितंबर २४-२८ धर्मसेवकोंधर्मसेविकाओं तथा ट्रस्टियों का प्रशिक्षण
(६) अक्तूबर २२-३० सम्राट अशोक के अभिलेखों पर अध्ययन-गोष्ठी
कृपया पंजीकरण एवं विवरण हेतु दिल्ली-संपर्क पते पर संपर्क करें।

नए उत्तरदायित्व :

वरिष्ठ सहायक आचार्य

१. श्री रवि देवांग, धुळे
२. श्री एन. एस. इस्सर, हरियाणा
३. कु. ज्ञानेश्वरी, फरीदाबाद
४. श्रीमती ज्योत्स्ना सी. मेहता, राजकोट
५. श्री मुरारी शर्मा, गुड़गांव

नवनियुक्तियाँ :

सहायक आचार्य

१. श्रीमती वर्षा मायावंशी, भड़ौच
२. श्री निरंजन गोयल, भटिंडा
३. श्री प्रमोद डी. भावे, धर्मशाला
४. श्रीमती मनोरमा एच. गजभिए, नागपुर
५. श्री बालकृष्ण पन्तावने, बम्बई
६. श्री शिवगन पटेल, भुज
७. श्री अम्बालाल राजभट्ट, भोपाल
८. डा. के. सेथु, केरल
9. Mr. John Jacob, Kottayam
10. Dr. Vichit Leenutapong,Thai
11. Mr. Chalerm Munkongdee,"

बाल-शिविर शिक्षक

१. श्री बीरेन्द्र विष्ट, उत्तरांचल
२. श्री के. एल. अग्रवाल, उत्तर प्रदेश
३. श्रीमती सुनीता अनिल चर्वे, नागपुर
४. कु. निरुपमा चन्दुरी, सिकन्दराबाद
५. श्रीमती क्षमादवे आनन्द, गुजरात
६. श्रीमती अपूर्वा अ. देशमुख, पुणे
७. श्रीमती वी. धनदुर्गा, हैदराबाद

(क्रमश:)

दोहे धर्म के

मन बंधन का मूल है, मन ही मुक्ति उपाय।
विकृत मन जकड़ा रहे, निर्विकार खुल जाय॥

मन के भीतर ही छिपी, स्वर्ग सुखों की खान।
मन के भीतर धधकती, ज्वाला नरक समान॥

कुदरत का कानून है, सब पर लागू होय।
मैला मन व्याकुल रहे, निर्मल सुखिया होय॥

अपने मन का मैल ही अपना नाश कराय।
ज्यूं लोहे का जंग ही, लोहे को खा जाय॥

मन के कर्म सुधार ले, मन ही प्रमुख प्रधान।
कायिक वाचिक कर्म तो, मन की ही संतान॥

कुदरत लेवे पक्ष ना, करे न कभी लिहाज।
उसको वैसा फल मिले, जिसका जैसा काज॥

मेसर्स मोतीलाल बनारसीदास

• महालक्ष्मी मंदिर लेन, ८ महालक्ष्मी चैंबर्स, २२ वार्डन रोड, मुंबई-४०००२६.
टे. ४९२३५२६, • सनस प्लाजा, शॉप ११-१३, १३०२, सुभाष नगर, पुणे-४११००२.
टे. -४८६१९०, • दिल्ली- २९११९८५,• पटना- ६७१४४२, • वाराणसी- ३५२३३१,
• बैंगलोर- २२१५३८९,• चेन्नई- ४९८२३१५, • कलकत्ता- २४३४८७४
की मंगल कामनाओं सहित

दूहा धरम रा

मन ही दुरजन, मन सुजन, मन बैरी, मन मीत।
मन सुधर्‌यां सै सुधरसी, कर मन परम पुनीत॥

चित स्यूं चित रो दमन कर, सहज सरल कर लेव।
चित स्यूं चित नै माज कर, सुद्ध स्वच्छ कर लेव॥

पाप मनां ही नीपजै, मन ही धरम समाय।
मन सुधर्‌यां ही मुक्ति है, बिगड़्यां बँधतो जाय॥

मन ही बंधन मँह बँधै, मन री ही है मुक्ति।
जांच परख कर देख लै, या अरहत री उक्ति॥

दौरै मन स्यूं बोलणो, दौरै मन ब्योहार।
दुख लागै ज्यूं बळद रै, गाडी चक्को लार॥

सौरै मन स्यूं बोलणो, सौरै मन रो काज।
लारै लागै छांह ज्यूं, सुख संपद रा राज॥

मेसर्स गो गो गारमेंट्स

३१ -४२, भांगवाड़ी शॉपिंग आर्केड,
१ला माला, कालबादेवी रोड, मुंबई - ४००००२.
टे. ०२२- २०५०४१४
की मंगल कामनाओं सहित

'विपश्यना विशोधन विन्यास' के लिए प्रकाशक, मुद्रक एवं संपादक: राम प्रताप यादव, धम्मगिरि, इगतपुरी-४२२४०३, दूरभाष : (०२५५३) ४४०८६, ४४०७६.
मुद्रण स्थान : अक्षर चित्र प्रिंटिंग प्रेस, ६९- बी रोड, सातपुर, नाशिक-४२२००७. **बुद्धवर्ष २५४५,** **माघ पूर्णिमा,** **२७ फरवरी, २००२**

वार्षिक शुल्क रु. २०/-, विदेश में US $ 10, **आजीवन शुल्क** रु. २५०/-, " US $ 100. **'विपश्यना' रजि. नं. १९१५६/७१.** Regn. No. AR/NSK-46/2002

Licenced to post w**ithout Prepayment of postage** -- Licence number-- **AR/NSK-WP/3**
Posting day- Purnima of Every Month, Posted at **Igatpuri-422403,** Dist. Nashik (M.S.)

If not delivered please return to:-
विपश्यना विशोधन विन्यास
धम्मगिरि, इगतपुरी - ४२२४०३
जिला-नाशिक, महाराष्ट्र, भारत
दूरभाष : (०२५५३) ४४०७६
फैक्स : (०२५५३) ४४१७६
Website: www.vri.dhamma.org
e-mail: <yadavdg@sancharnet.in>
e-mail: dhamma_nsk@sancharnet.in (for booking)